OM 17 EDITED_Page 1 and 2 11-11-2014 15:47 Page 9

लंदन। दिवाली कार्यक्रम में सम्बोधित करते हुए ब्र.कु. जयन्ती। साथ हैं अन्य भाई बहनें।

आगरा-शास्त्रीपुरम। सेवाकेन्द्र के हॉल का उद्घाटन करने के बाद दीप प्रज्वलन करते हुए ब्र.कु. विमला,ज़ोन इंचार्ज,आगरा, ब्र.कु. अश्विना, ब्र.कु. कविता, ब्र.कु.मधु तथा अन्य ब्र.कु.बहनें।

छिंदवाड़ा। 'संस्कार परिवर्तन से संसार परिवर्तन' कार्यक्रम का दीप प्रज्वलन कर उद्घाटन करते हुए विधायक चौधरी चंद्रभान सिंह, नगर पालिका उपाध्यक्ष धर्मेन्द्र मिगलानी, हिन्दी प्रचारणी के प्राध्यापक विमल परिहार, जबलपुर से आयीं ब्र.कु. भावना, ब्र.कु. गणेशी तथा अन्य।

ववाना-दिल्ली। ज्ञानचर्चा के पश्चात् समूह चित्र में पुलिस स्टाफ, ब्र.कु. चन्द्रिका तथा ब्र.कु. जिगिषा।

मीरगंज-बिहार। जन्माष्टमी के शुभ अवसर पर भा.ज.पा. नेता ज्योति भूषण को ईश्वरीय सौगात देते हुए ब्र.कु. सुनिता तथा अन्य।

वोदवड-जलगांव। शहर के चौक में सर्व आत्माओं के परमपिता परमात्मा के बैनर के उद्घाटन पश्चात् संबोधित करते हुए ब्र.कु. वर्षा।

स्वधर्म सुख का आधार है और परधर्म दु:ख का कारण

गीता ज्ञान का आध्यात्मिक रहस्य

-राजयोग शिक्षिका ब्र.कु.उषा

इसलिए जहाँ स्वार्थ युक्त प्रेम होता है, वहाँ शांति कभी हो ही नहीं सकती है। जहाँ आपसी समझ हो, शुद्ध भावनायें हो, प्रेम हो तो वहाँ शांति वास करती है। जहाँ ये चारो होते हैं वहाँ जीवन का सच्चा सुख है। आज मनुष्य को जीवन में सच्चे सुख का अनुभव ही नहीं होता है क्योंकि उसके ये चारो आधार हैं ही नहीं। जहाँ ये पाँचों हैं वहाँ जीवन की सर्वोच्च प्राप्ति आनंद है, खुशी है, उत्साह है, तब जीवन में उमंग आता है और जीवन जीने का आनंद आने लगता है। यही तो जीवन जीने की कला है और जहाँ ये छ: बातें हैं - वहाँ 'आत्मशक्ति' अनुभव होती है। आज आत्मशक्ति को तो छोड़ो मनुष्य जीवन में 'विश्वास' ही खत्म होता जा रहा है। इसका कारण क्या है? ये छ: गुणों की कमी। वास्तव में ये आत्म के गुण नहीं बल्कि छ: शक्तियां हैं। ज्ञान की शक्ति (पावर ऑफ नॉलेज), पवित्रता की शक्ति (पावर ऑफ प्यूरिटी), प्रेम की शक्ति (पावर ऑफ लव), शांति की शक्ति (पावर ऑफ पीस) ये सब शक्तियां हैं। जब ये शक्ति हो तो आत्मशक्ति विकसित होती है। यही सात गुण आत्मा का स्वधर्म है, यही उसका गुणधर्म है। जिसमें स्थित होकर हर आत्मा कम्फर्टेबल अनुभव करती है। अगर ये गुण धर्म ही न हो, मान लो सब कुछ हो लेकिन शांति ही न हो तो वो जीवन कैसा होगा? टेंशन से भरा होगा। इसमें से एक गुण भी कम हो जाए, जैसे शरीर के पाँच तत्वों में से एक तत्व भी कम हो जाए तो कैसी बेचैनी होती है। ऐसे आत्मा में भी सात गुणों में से एक गुण भी कम हो गया तो जीवन जीने का आनंद नहीं रहेगा। जीवन, जीवन नहीं लगेगा। ये स्वधर्म है, दूसरे शब्दों में कहें तो यही आत्मा की बैट्री है। लेकिन आज के युग में ये बैट्री डिस्चार्ज हो गयी है। अब उसको चार्ज कैसे करें? इसलिए भगवान ने अर्जुन को कहा कि हे अर्जुन! तुम्हारे पास आत्मा में इतनी क्षमता और ऊर्जा होने के बाद भी अगर तुम युद्ध नहीं करोगे, इस संघर्ष में अपने मन को विजयी नहीं बनाओगे तो पाप लगेगा और तुम अपनी कीर्ति को भी खोकर अपयश के भागी बनोगे। लेकिन इस स्वधर्म से आज इंसान बहुत दूर चला गया है। यही उसके अनादि संस्कार हैं जिससे हम दूर होकर परधर्म के लक्षणों को अपने जीवन में ले आए हैं। तभी कहा जाता है 'स्वधर्म सुख का आधार है और परधर्म दु:ख का कारण है।' ये परधर्म कौन सा है? ये स्वधर्म से 'पर' कौन सी बात है? वह है अज्ञान यानि अहंकार, अपवित्रता, स्वार्थ की भावनायें। नफरत, शांति के बजाए तनाव, क्रोध, सुख के बजाए दु:ख की फीलिंग, आनंद के बजाए उदासी की भावनायें या ईर्ष्या की भावनायें। जहाँ आत्मशक्ति का अनुभव नहीं होता वहाँ 'परधर्म' है। स्वधर्म सुख का आधार है और परधर्म दु:ख का कारण है। आज हम अपनी वास्तविकता से बहुत दूर चले गए हैं इसलिए अपने स्वधर्म के संस्कार से बहुत दूर चले गये हैं तब परधर्म की अधीनता हमारे जीवन में आ जाती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष, छल-कपट, आलस्य, भय, स्वार्थ उसकी अधीनता जीवन में आ जाती है और यही दु:ख का कारण है। इसलिए स्वधर्म के संस्कार को पुन: जागृत करना है। इसलिए महान आत्माओं ने कहा कि शांति बाहर नहीं भीतर है, सुख बाहर नहीं है भीतर है, भीतर जाओ, शक्ति बाहर नहीं है भीतर है इसलिए भीतर जाओ। ये हम सबके भीतर है, लेकिन आज हम उससे बहुत दूर चले गए हैं । -क्रमश:

राजयोगी जीवन

राजयोगी जीवन बनाने का अर्थ ही यह है कि हम इन अनेक प्रकार के आकर्षणों से छूट जायें क्योंकि ''पराधीन सपने हूं सुख नाहिं''। सुख तो स्वाधीनता में और स्वतन्त्रता में है। स्वतन्त्रता इन आकर्षणों से मुक्त होने में ही है। इन आकर्षणों से आज़ाद होने की विधि योग है। योग के अभ्यास द्वारा मनुष्य धन, सत्ता, सौन्दर्य, इन्द्रिय विषयों इत्यादि के प्रभाव-क्षेत्र से निकल कर परमात्मा के प्रभाव-क्षेत्र में आ जाता है। उसके मन में सात्विक प्रकार का सही वैराग्य आ जाता है जिससे कि वह धन और सत्ता इत्यादि के मोह तथा अभिमान से मुक्त हो जाता है और उन्हें प्राप्त करने के लिये भ्रष्टाचार, अनाचार, अत्याचार और दुर्व्यवहार को नहीं अपनाता। योग द्वारा ही वह सन्तुष्ट हो जाता है और सन्तुष्टता ही लोभ की प्रतिरोधी है। योगियों की कर्मेन्द्रियाँ चंचल न होकर शीतल होती हैं। योगी ही रंग, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, सौन्दर्य इत्यादि के आकर्षणों से मुक्त होकर परमपिता परमात्मा ही की ओर आकर्षित होता है। वह साज-सज्जा के बजाए सादगी को ही अपनाता है। सादगी, स्वच्छता तथा सन्तोष ही सबसे बड़ी प्राप्ति है। उस प्राप्ति को पाकर उसे सत्ता की इच्छा नहीं होती।

योग के अभ्यास के बिना, कोई व्यक्ति, चाहे वह धर्म-प्रेमी, प्रभु-प्रेमी और मर्यादा-प्रेमी भी हो, धन, सत्ता, सौन्दर्य और ऐन्द्रिय सुख-सामग्री के आकर्षणों से मुक्त नहीं हो पाता। साधु, सन्त,महात्मा भी इनसे खिंचे हुए-से इनकी फिसलन में फिसल जाते हैं। कई लोग योगी बनने के लक्ष्य से योग मार्ग की ओर जाते हैं परन्तु वे अन्य प्रकार के इन आकर्षणों में फंस जाते हैं। जनता की सेवा करते-करते वे उसके लिये ही धन इकठ्ठा करने लगते हैं, और फिर इस प्रवृत्ति के बढ़ने पर वे सेवा के भाव को गौण तथा पैसे के संग्रह को प्रधानता दे देते हैं। उन्हें लोग फल-फूल, घी-दूध, अन्न-धन देते हैं परन्तु वे उनके चस्के की चीज़े बना कर उनके रसिक बन जाते हैं। ''फलां जगह आध्यात्मिक सन्देश पहुंचाना है; फलां लोगों को भी लाभान्वित करना है''— इस उद्देश्य को लेकर वे चलते हैं परन्तु चलते-चलते उस स्थान या क्षेत्र को तथा उन लोगों को अपनी ही सम्पत्ति मानने लगते हैं। बड़े सन्त बनने पर वे अन्य साधुओं-सन्तों में बड़ी प्रतिष्ठा पाने की कामना करने लगते हैं और इस प्रकार सत्ता के प्रलोभन में आ जाते हैं, सत्ता के प्रलोभन में ही वे बड़े-बड़े महल बनाते हैं, उनको सजाते तथा उस द्वारा अपनी पब्लिसिटी कराने की चेष्टा कर बैठते हैं। 'योगी' कहलाने पर भी उनके जीवन में सादगी और त्याग नहीं होता बल्कि वे महत्वाकांक्षी वाले होते हैं और अनेक प्रकार के आकर्षणों रूपी डोरों में जकड़े हुए होते हैं।

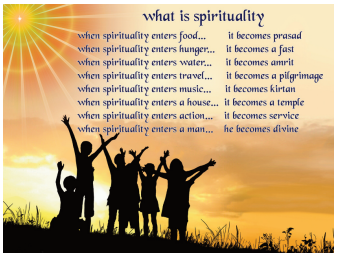

इसलिये ही कहा गया है कि ''राजयोगी भव।'' योग मार्ग पर जाने की केवल कामना ही नहीं करनी है बल्कि प्रैक्टिकल में योगी बनना है। योगाभ्यास द्वारा ही देह से न्यारे होकर इन आकर्षणों से मुक्त हो सकते हैं क्योंकि इन सभी आकर्षणों का सम्बन्ध देह-अभिमान से ही है। इन आकर्षणों के कारण ही आत्मा इस स्थूल जगत की चेतना से मुक्त होकर ऊंची उड़ान नहीं भर सकती। इन आकर्षणों के कारण ही वह फरिश्ता नहीं बन सकती बल्कि आत्मा पिंजरे के पक्षी के समान बन्धी हुई है। जब पूर्ण पराकाष्ठा में वैराग्य होगा, देह-अभिमान का त्याग होगा, योग का अभ्यास करने स्वरूप सौभाग्य होगा तभी आत्मा पूर्ण रूप से स्वतन्त्र और सुख-शान्ति-सम्पन्न होगी। अत: योगाभ्यास जिन्दाबाद; प्रकृति के आकर्षण मुर्दाबाद!